Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : **www.shisrrj.com**
OPEN ACCESS
© 2025 SHISRRJ | Volume 8 | Issue 2
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

रत्नप्रकाश टीका के आलोक में "स्वादिष्वसर्वनामस्थाने" सूत्रविचार

सोहन आर्य
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, डीपीबीएस कॉलेज अनूपशहर

Article Info

Accepted : 01 March 2025
Published : 15 March 2025

Publication Issue :
March-April-2025
Volume 8, Issue 2

Page Number : 19-23

शोधसार- प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी ने रत्नप्रकाश टीका के अनुसार स्वादिष्वसर्वनामस्थाने सूत्र पर विचार प्रस्तुत किया है। रत्नप्रकाशकार ने सर्वप्रथम असर्वनामस्थान पद पर विचार करते हुए पर्युदास एवं प्रसज्य नामक दो प्रकार के नञ् पर विचार किया है। प्रकृत पद में प्रसज्य प्रतिषेध मानते हुए उसमें आने वाले दोषों का निवारण करते हुए इस पद में पर्युदास प्रतिषेध को स्वीकार किया है तथा तत्पश्चात् सूत्र में योग विभाग करते हुए स्वादिषु एवं असर्वनामस्थाने ऐसा योग विभाग करते हुए "अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा" इस परिभाषा के आधार पर प्रकृत पद में प्रसज्य प्रतिषेध को भी सिद्ध किया है।

मुख्य शब्द- रत्नप्रकाश, सूत्र, प्रसज्यप्रतिषेध, पर्युदासपरक, व्याकरणशास्त्र।

प्रकृत सूत्र का आशय यह है कि सर्वनामस्थान संज्ञक[1] (नपुंसक लिङ्ग से अतिरिक्त सु, औ, जस्, अम्, औट् ये पाँच प्रत्यय एवं जस् और शस् के स्थान पर विधीयमान शि सर्वनामस्थान संज्ञक हैं[2] सु, औ, जस्, अम्, औट् इन पञ्च प्रत्ययों से अतिरिक्त शेष सु आदि प्रत्ययों के परे रहते पूर्व की पदसंज्ञा होती है। चतुर्थाध्याय के स्वौजस्मौट् सूत्र से प्रारम्भ होकर पञ्चमाध्याय के उर: प्रभृतिभ्य कप्[3] सूत्र से विधीयमान कप्प्रत्ययान्त सभी प्रत्यय स्वादि कहलाते हैं।

प्रकृत सूत्र में असर्वनामस्थाने पद पर विचार करते हुए महाभाष्यकार कहते हैं कि प्रकृत सूत्र में असर्वनामस्थाने पद कहने से राजा तथा तक्षा इन शब्दों में प्रथमा के एकवचन सु प्रत्यय के परे रहते पदसंज्ञा का निषेध प्राप्त होता है। राजन् और तक्षन् शब्द से सु प्रत्यय होकर सुडनपुंसकस्य सूत्र से सु की सर्वनामस्थान संज्ञा है। अत: उसके लोप हो जाने पर भी उसके सर्वनामसंज्ञक होने से प्रत्ययलक्षण मानकर उसके परे रहने पर उससे पूर्व राजन् व तक्षन् शब्दों में पदसंज्ञा का निषेध प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप पदसंज्ञा न होने से नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य सूत्र से न लोप नहीं हो सकता है। इस समस्या पर विचार करते हुए रत्नप्रकाशकार कहते है कि असर्वनामस्थान पद में प्रसज्यप्रतिषेध मानने पर यह समस्या आती है। प्रसज्य प्रतिषेध में विधि की अप्रधानता एवं निषेध की प्रधानता मानी जाती है। तथा प्रसज्यप्रतिषेध में नञ् क्रिया का निषेध करता है। व्याकरण शास्त्र में दो प्रकार के नञर्थ की अवधारणा स्वीकृत की गई है।

Copyright © 2025 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

दौ नञौ समाख्यातौ पर्युदासप्रसज्यकौ।

पर्युदासः सदृग्ग्राही प्रसज्यस्तु निषेधकृत्।।[4]

प्रतिषेधार्थक नञ् दो प्रकार के वैयाकरणों ने स्वीकार किए हैं-

पर्युदास प्रतिषेध

प्रसज्य प्रतिषेध

द्विविध नञों में पर्युदास सदृश का ग्रहण कराता है एवं प्रसज्य निषेध करता हैं। इन दोनों को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि-

प्राधान्यं तु विधेर्यत्र प्रतिषेधेऽप्रधानता।

पर्युदासः स विज्ञेयो यत्रोन्तरपदेन नञ्।।

अप्रधान्यं विधेर्यत्र प्रतिषेधे प्रधानता।

प्रसज्यस्तु स विज्ञेयो क्रियया सह यत्र नञ्।।[5]

अर्थात् जहाँ विधि की प्रधानता एवं निषेध की अप्रधानता, उत्तरपद का निषेध एवं जिस का निषेध किया जाता है पुनः विधि में उसके सदृश का ही ग्रहण किया जाता है यथा अब्राह्मणमानय उदाहरण में आनय विधि की प्रधानता एवं निषेध की अप्रधानता है। उत्तरपद ब्राह्मण का निषेध के कारण उसके सदृश किसी पुरुषविशेष को ही लाया जाएगा, प्रस्तर इत्यादि को नहीं। इसके विपरीत प्रसज्य में प्रतिषेध की प्रधानता होती है यथा अनृतं न वक्तव्यम्।

राजा एवं तक्षा पदों में सर्वनामस्थान संज्ञा प्राप्त होने से पद संज्ञा के अभाव में नलोप विधान नहीं हो सकता है। इस स्थिति में राजा तक्षा रूप सिद्ध नहीं हो सकते हैं। इस समस्या पर विचार करते हुए रत्नप्रकाशकार कहते हैं कि असर्वनामस्थाने पद में प्रसज्य प्रतिषेध मानने पर यह समस्या दृष्टिगोचर होती है।

रत्नप्रकाशकार आचार्य शिवरामेन्द्र सरस्वती लिखते है कि-

असर्वनामस्थाने इति प्रसज्यप्रतिषेधं मन्यमान आह- असर्वनामस्थान इति। तत्र त इति। तथा सति ते मते इत्यर्थः। राजा तक्षेति स्थानिवद्भावेन सर्वनामस्थान परत्वमाश्रित्य पदत्वप्रतिषेधेन लोपो न स्थादित्यर्थः।[6]

रत्नप्रकाशकार कहते है कि जब असर्वनामस्याने पद में प्रसज्य प्रतिषेध स्वीकृत होगा तब प्रकृत सूत्र का अर्थ इस तरह होगा - सर्वनामस्थान के परे-रहते पदसंज्ञा नहीं होती है। इस स्थिति में राजन् सु यहाँ सुँ प्रत्यय की सुडनपुंसकस्य[7] सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञा है। अतः उसके लोप हो जाने पर भी प्रत्यय के सर्वनामस्थान संज्ञक होने के कारण प्रत्ययलक्षण के कारण प्रत्यय से पूर्ववर्ती राजन इत्यादि शब्दों में पदसंज्ञा का निषेध प्राप्त होता है फलतः परसंज्ञा के अभाव में नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य[8] सूत्र से नलोप नहीं हो पाता है।

इसके विपरीत जब असर्वनामस्थाने पद मे पर्युदास प्रतिषेध (सदृग्ग्राही) माना जाएगा तो प्रकृत सूत्र का यह अर्थ होगा सर्वनामस्थान भिन्न स्वादि प्रत्ययों के परे रहने पर पूर्व की पदसंज्ञा होती है। परिणामतः पदसंज्ञा का निषेध नहीं होगा

अपितु सर्वनामस्थान से भिन्न में विधि होगी। सर्वनामस्थान में यदि किसी से पदसंज्ञा प्राप्त होती है तो वह विधि ही हो जाएगी। इस स्थिति में राजा और तक्षा पदों में सुप्तिङ्न्तं पदम् से पदसंज्ञा प्राप्त है वह हो जाएगी।

असर्वनामस्थान पद में पर्युदास मानकर दोष का परिहार करने के पश्चात् प्रसज्यपक्ष में भी दोष के परिहारार्थ महाभाष्यकार लिखते हैं कि- अप्राप्तेर्वा। अथवा अनन्तरा या प्राप्ति सा प्रतिषिध्यते। कुत एतत्? अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा। पूर्वा प्राप्तिरप्रतिषिद्धा तया भविष्यति। ननु चेयं प्राप्तिः पूर्वा प्राप्ति वाधते, नोत्सहते प्रतिषिद्धा सती बाधितुम्।[9] अर्थात् पूर्वप्राप्ति सुप्तिऽन्तं पदम् द्वारा प्राप्त है। रत्नप्रकाशकार इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि- 'पूर्वा प्राप्तिरिति 'सुतिङन्तं इति सूत्रकृतेत्यर्थः'[10] प्रसज्यपक्ष में दोष का परिहार प्रकृत सूत्र में योगविभाग द्वारा किया जाता है। महाभाष्यकार स्वादिष्वसर्वनामस्थाने इस सूत्र को दो योगों स्वादिषु एवं असर्वनामस्थाने में विभक्त करते हैं। प्रसज्य पक्ष में पदसंज्ञा का निषेध होता। है। स्वादिषु इस अनन्तर सूत्रकथित पदसंज्ञा की प्राप्ति को असर्वनामस्थाने इस प्रतिषेध कथन द्वारा रोका जाता है। इस प्रतिषेध द्वारा 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र प्राप्त प्राप्ति को नहीं रोका जा सकता है। यह विधान 'अनन्ततरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा'[11] इस परिभाषा के सामर्थ्य से होता है। इस परिभाषा का अर्थ यह है कि अनन्तर अर्थात् व्यवधानरहित का ही विधान होता है एवं व्यवधानरहित का ही निषेध। सव्यवधान की न विधि होती है ना ही निषेध होता है। इस परिभाषा के अनुसार असर्वनामस्थाने यह निषेध अपने से अनन्तर या व्यवधानरहित 'स्वादिषु' से प्राप्त होने वाली पद संज्ञा का ही निषेध करेगा। उससे दूर या व्यवहित सुप्तिऽन्तं पदम् से होने वाली पदसंज्ञा का निषेध असर्वनामस्थाने द्वारा नहीं हो सकेगा। फलतः सुप्तिङ्न्तं पदम् सूत्र से प्राप्त होने वाली पदसंज्ञा हो जाएगी एवं इस स्थिति में राजा तक्षा इत्यादि प्रयोगों में पदसंज्ञा सिद्ध हो जाती है।

इस समाधान के पश्चात् अन्यत् समाधान प्रस्तुत करते हुए महाभाष्यकार कहते हैं कि प्रकृत सूत्र में पुनः योगविभाग कर किया जाएगा। स्वादिषु एक सूत्र एवं सर्वनामस्थानेऽयचि द्वितीय सूत्र होगा। इस योगविभाग पक्ष में प्रथम सूत्र का अर्थ होगा कि सु आदि प्रत्यय के परे रहते पूर्व की पदसंज्ञा हो जाती है। द्वितीय सूत्र का अर्थ होगा कि यकार और अजादि से भिन्न सर्वनामस्थान में पूर्व की पदसंज्ञा होती है। रत्नप्रकाशकार आचार्य शिवरामेन्द्र सरस्वती इस महाभाष्यांश को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि प्रकारान्तर से दो समाधान प्रस्तुत करने के पश्चात् भी चातुर्यप्रदर्शन हेतु अन्य समाधान प्रस्तुत करते हैं-

जातेऽपि द्वेधा समाधाने चातुर्यविशेषपुदर्शनायाह-अथवेति। सर्वनामस्थानेऽयचीति। असर्वनामस्थाने इत्यकारो निषेधार्थकः क्रियान्वयीति सूचयितुं याचि इत्येतस्मात् पूर्वं योजितः। तथा चज्ञादौ सर्वनामस्थाने परे पूर्व पदसंज्ञं न भवति इत्यर्थः। यग्रहणमुत्तरार्थमेव। भसंज्ञाविद्यौ निषेधपरोऽकारः सर्वनामस्थानशब्देनैव संबध्ध पर्युदासपरः संबधते इत्याशये नाह- ततो भमिति।[12]

रत्नप्रकाशकार आचार्य शिवरामेन्द्र सरस्वती लिखते हैं कि असर्वनामस्थाने पद में विद्यमान निषेधार्थक नञ् के अकार को क्रिया से संबद्ध सूचित करने हेतु यदि इस पद से पूर्व लगाया गया है। ध्यातव्य है कि यकारादि सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय न होने के कारण यकारग्रहण उत्तरार्थ जानना चाहिए । इससे अजादि सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों के परे रहते ही पदसंज्ञा का निषेध का विधान किया जाता है हलादि प्रत्ययों में नहीं। सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्ययों में मात्र सु प्रत्यय ही अजादि

नहीं है और सभी अजादि है अत: अजादिभिन्न सूँ के परे रहते पदसंज्ञा हो जाएगी और राजा तक्षा इत्यादि प्रयोगों में पद संज्ञा के सिद्ध हो जाने से नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य[13] सूत्र से नलोप हो जाएगा। अन्य सुँ से भिन्न अजादि सर्वनामस्थान संज्ञको प्रत्ययों में पदसंज्ञा नहीं होगी।

भाष्यकार इस योगविभाग के पश्चात् अगला सूत्र 'भम्' होगा। उसका अर्थ सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादि और अजादि प्रत्यय के परे रहते पूर्व की भ संज्ञा होती है।

इसको स्पष्ट करते हुए रत्नप्रकाशकार आचार्य शिवरामेन्द्र सरस्वती लिखते हैं कि भसंज्ञा विधान में नञ् पुन: सर्वनामस्थान पद के साथ जुडकर पर्युदासपरक हो जाता है। भाव यह है कि केवल सु के परे रहते हुए पूर्व की पदसंज्ञा करने के लिए असर्वनामस्थाने पद में विद्यमान नञ् को सर्वनामस्थान से पृथग् करके यचि के साथ जोड़ा गया है। भसंज्ञाविधायक सूत्र में तो असर्वनामस्थाने पद के साथ ही नञ् का संबन्ध होगा एवं नञ् सहग्ग्राही पर्युदासपरक माना जाएगा।[14] इसी तथ्य को आचार्य कैय्यट ने भी स्वीकार किया है। प्रदीपकार लिखते है कि असर्वनामस्थाने इत्यत्र नञ् श्रुतो यचीत्यनेन संबन्धं नीयते। यकारादि सर्वनामस्थान नास्तीति यग्रहणामुत्तरार्थम्। तेनाजादौ सर्वनामस्थाने पदसंज्ञा निषिध्यते, न तु हलादाविति राजेत्यत्रापि भवति। भसंज्ञं चेति। भसंज्ञाविधौ असर्वनामस्थानेनैव नञ् संबध्यते।[15] इसके पश्चात् महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि लिखते हैं कि–

भुवद्वद्भयो धारयद्वद्भय: (पदसंज्ञा) एतयो: पदसंज्ञा वक्तव्या– भुवद्वद्भय:, धारयद्वद्भय:।[16]

इसका अर्थ यह है कि भुवद्वद्भय: धारयद्वद्भय: यहाँ प्रकृत उदाहरणों में विशेष रूप से पदसंज्ञा कहनी चाहिए। इसकी उपयोगिता को सिध करते हुए महाभाष्यरत्नप्रकाशकार आचार्य शिवरामेन्द्र सरस्वती लिखते हैं कि– 'तसौ मत्वर्थ इति भसंज्ञापवाद:'।[17]

रत्नप्रकाशकार आचार्य का भाव यह है कि भुवत् और धारयत् इन तकारान्त शब्दों से मतुप् प्रत्यय के परे होने के कारण झय:[18] सूत्र से यदि मतुप् प्रत्यय के मकार को वकार हो जाता है तो तसौ मत्वर्थे[19] सूत्र से तकारान्त और सकारान्त शब्द की मत्वर्थक प्रत्यय के परे रहते भसंज्ञा होने के कारण बुवत् और धारयत् तकारान्त शब्दों की भी भसंज्ञा प्राप्त होती है। तसौ मत्वर्थे सूत्र से प्राप्त भसंज्ञा को बाधकर महाभाष्यकार के प्रकृत वार्तिक द्वारा इन पदों में पदसंज्ञा हो जाती है। भसंज्ञा को बाधकर महाभाष्यकार के वार्तिक कथन के होने वाली पदसंज्ञा के परिणामस्वरूप भुवत् और धारयत् शब्दों के तकार को झलां जशोऽन्ते[20] सूत्र से दकार आदेश होकर भुवद्वद्भय: और धारयद्वद्भ्य पद सिद्ध हो जाते हैं। प्रकृत प्रसंग में रत्नप्रकाशकार प्रदीपकार के मत भसंज्ञा प्राप्तौ पदसंज्ञाविधि:[21] से सर्वथा सहमत हैं।

इस प्रकार रत्नप्रकाशकार ने इस सूत्र की व्याख्या में असर्वनामस्थाने पद में पर्युदास एवं प्रसज्य प्रतिषेध मानकर विश्लेषण करते हुए दोनों पक्षों में समाधान प्रस्तुत किया है। एतदनन्तर रत्नप्रकाशकार ने प्रकृत सूत्र में योगविभाग मानकर भी इस सूत्र को व्याख्यात किया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.सुडनपुंसकस्य

2. शि सर्वनामस्थानम्
3. अष्टा. 5.4.151
4. लघुसिद्धान्तकौमुदी
5. लघुसिद्धान्तकौमुदी
6. रत्नप्रकाश
7. अष्टाध्यायी 1.1.43
8. अष्टाध्यायी 8.2.7
9. महाभाष्य
10. रत्नप्रकाश
11. पारिभाषिक
12. रत्नप्रकाश
13. अष्टा.8.2.7
14. रत्नप्रकाश
15. अष्टा.1.4.19
16. अष्टा.8.2.10
17. प्रदीप
18. महाभाष्य
19. रत्नप्रकाश
20.अष्टा.8.2.29
21. प्रदीप